पारस परस

वर्ष-14, अंक-2, अप्रैल-जून, 2024, रजि. नं.:यू.पी. एच.आई.एन./2011/39939 पृष्ठ -40 मूल्य- 25

सृजन स्मरण

महावीर प्रसाद द्विवेदी

जन्म 5 मई 1864, निधन 21 फ़रवरी 1938

नए नए देश जहाँ अनेक,
जीत गए थे नित एक एक ।
जो थी जगत्पूजित भाग्यभूमि,
वही हमारी यह आर्यभूमि ।।

वर्ष : 14 अंक : 2 अप्रैल-जून, 2024 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की विविध विधाओं
की त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक
डॉ. शम्भुनाथ

प्रधान संपादक
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित

संपादक
डॉ. अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक
सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय
538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग
मेट्रो प्रिन्टर्स, लखनऊ
मेट्रो प्रिंटर्स, डी-102 महानगर, लखनऊ

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डॉ. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ उ.प्र. से मुद्रित तथा ए-1/15 रश्मि, खण्ड, शारदा नगर योजना, लखनऊ उ.प्र. से प्रकाशित।
सम्पादकः डॉ. अनिल कुमार

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
श्रद्धा सुमन		
रोम-रोम कण-कण में	डॉ. अनिल कुमार पाठक	5
पुण्य स्मरण		6
कालजयी		
किसान	पारस नाथ पाठक 'प्रसून'	7
आर्य भूमि	महावीर प्रसाद द्विवेदी	8
एक तुम हो	माखन लाल चतुर्वेदी	9
पावन प्रान्त तुम्हारी जय हो	खुशीराम द्विवेदी 'दिव्य'	10
होली	लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक'	11
हार न अपनी मानूंगी मैं!	गोपालदास 'नीरज'	12
गजल	कुंवर वेचैन	13
नारद का पछतावा	सुरेश सलिल	14
समय के सारथी		
कवि का घर	राम दरश मिश्र	15
जवान होते बेटों!	अष्टभुजा शुक्ल	16
सपना है धरती का	नन्द किशोर आचार्य	17
मेरे भारत की माटी है....	सोम ठाकुर	18
उसे ले गये	नरेश सक्सेना	19
दर्द पलता रहा	विद्या विन्दु सिंह	20
जो मेरे घर कभी नहीं आएंगे	विनोद कुमार शुक्ल	21
गीत	उमाशंकर शुक्ल 'शितिकण्ठ'	22
मन का भी श्रृंगार जरूरी है	डॉ. शिवभजन कमलेश	23
होली	अशोक कुमार पाण्डेय 'अशोक'	24
गीतों के गांव	ओम निश्छल	25
जिन्दगी की न टूटे लड़ी	संतोष आनन्द	26
उदबोधन		
जिसे देश से प्यार नहीं है	श्रीकृष्ण सरल	27
वीर	रामधारी सिंह 'दिनकर'	28
स्वदेश	रामनरेश त्रिपाठी	29
कलरव		
हम हैं किशोर	राम स्वरूप दूबे	30
मैंना की शादी	शंभूलाल शर्मा 'बसंत'	31
खेल कबड्डी	राम सेवक शर्मा	32
नारी स्वर		
आखिरी मुलाकात	कल्पना पंत	33
याचना	तारादेवी पाण्डेय	34
धुंआ नहीं मंड़राया	पुष्पा राही	35
नवोदित		
बसंत	त्रिवेणी प्रसाद दुबे 'मनीष'	36
हे भारत मां	वीरपाल निश्छल	37
जंगल	कीर्तिनारायण मिश्र	38
पहाड़ी के पत्थर	अनिल मिश्र	39
कागज में कोहिनूर	श्याम नारायण	40

साहित्य और समाज

कहा जाता है कि 'साहित्य समाज का दर्पण है' यानी जिस तरह से हम दर्पण में हू–ब–हू अपना प्रतिबिम्ब देख पाते हैं, उसी तरह से साहित्यकारों द्वारा सृजित साहित्य के माध्यम से भी हम समाज के विभिन्न कालखण्डों, भू–भागों से सम्बन्धित व्यक्तियों, घटनाओं आदि के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं और उन्हें समझ सकते हैं। हालाँकि सामान्य रूप से उक्त कथन का अर्थ समझना कठिन नहीं है, किन्तु इसके निहितार्थ कुछ और भी हैं। इसे समझने से पहले दर्पण व दर्पण को बनाने वाले तथा साहित्य एंव साहित्यकार के मध्य सम्बन्ध को समझना ज़रूरी है।

यहाँ सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि दर्पण बनाने वाला उसे किस तरह से एंव कैसे बनाता है। सामान्यतः दैनिक उपयोग हेतु हम ऐसे दर्पण का उपयोग करते हैं, जो हमारी छवि को यथारूप प्रदर्शित करता है, किन्तु कभी–कभी हमें ऐसे भी दर्पण देखने को मिलते हैं, जिनमें हमारा प्रतिबिम्ब छोटा–बड़ा अथवा विरूपित दिखाई पड़ता है। विशेष प्रयोजनों हेतु अलग–अलग दर्पणों का आविष्कार हुआ है और उसके लिए इनका प्रथक उपयोग किया जाता है। जैसे समतल दर्पण का हम अपनी छवि देखने के लिए प्रयोग करते हैं, जबकि उत्तल, अवतल तथा परवलीय आदि दर्पणों का उपयोग विशिष्ट कार्यों के लिए होता है। तात्पर्य यह है कि समतल दर्पण से भिन्न अन्य दर्पण भी हैं, भले ही ये किसी विशेष कार्य अथवा मनोरंजन के लिए बनाये एंव प्रयोग किये जाते हों। अब यही बात साहित्य के सन्दर्भ में भी लागू हो जाती है वह यह कि प्रत्येक साहित्य समाज का दर्पण नहीं है। तात्पर्य यह है कि साहित्यकार की पक्षधरता से ही यह पता चल सकता है कि उसके द्वारा सृजित साहित्य, दर्पण की किस कोटि में आएगा?

हालाँकि किसी के भी मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या साहित्य केवल इतिहास लेखन है, जो विभिन्न कालखण्डों में हुई घटनाओं के वर्णन मात्र तक सीमित होता है? इस संबन्ध में यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि इतिहास लेखन में भी यत्र–तत्र तथ्यों की अनदेखी की गई है, और कहीं–कहीं इसे अपनी–अपनी निष्ठा के अनुसार बढ़ा–चढ़ा कर महिमा मण्डित किया गया है या फिर कहीं–कहीं केवल निन्दा और आलोचना ही की गई है। इसलिए यहाँ सबसे महत्वपूर्ण है लेखक एवं साहित्यकार की सत्यनिष्ठा यानी वह सत्य का पक्षधर है अथवा असत्य का पक्षधर है। यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि सत्य और असत्य से भिन्न तटस्थ अथवा निष्पक्ष होना अधिक महत्त्वपूर्ण और श्रेयस्कर होता है, लेकिन मेरा मानना है कि तटस्थ एवं निष्पक्ष श्रेणी केवल और केवल अपने सामाजिक और नैतिक दायित्वों एवं कर्तव्यों से विमुख रहने वाले लोगों के लिए है। जो भी हो, साहित्यकार अपने समय का प्रतिनिधि होता है, इसलिए पक्षधर होना तो ज़रूरी है और वह भी सत्य का। तटस्थ एवं निष्पक्ष होने से अच्छा असत्य का पक्षधर होना है (अगर सत्य का पक्षधर होना हमें रास नहीं आता है,) क्योंकि इससे लोगों में द्विविधा एवं भ्रम की स्थिति तो नहीं रहेगी। तटस्थता को कभी भी उत्तम श्रेणी में नहीं रखा गया है। रामधारी सिंह 'दिनकर' की कविता "समर शेष है" की निम्नलिखित पंक्तियाँ अत्यन्त प्रासंगिक हैं–

"समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याध
जो तटस्थ हैं, समय लिखेगा उनके भी अपराध।"

सत्य को जानकर भी उससे मुख मोड़ना अथवा उसका समर्थन न करना भी किसी दृष्टि से उचित नहीं है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' में दिनकर जी लिखते हैं–

"जो सत्य जान कर भी न सत्य कहता है,
या किसी लोभ के विवश मूक रहता है,
उस कुटिल राजतन्त्री कदर्य को धिक् है,
यह मूक सत्यहन्ता कम नहीं वधिक है।"

सत्य के संवाहक के रूप में साहित्यकार की भूमिका अग्रणी होनी चाहिए, इसीलिए उसे हर दृष्टि से सजग रहना होगा। हालाँकि जब हम सत्य की पक्षधरता की बात करते हैं तो यह बात भी आ जाती है कि हमारी संस्कृति और परम्परा में सत्य के साथ प्रिय होने का भी उल्लेख किया गया है–

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यम् अप्रियम्।
प्रियं च नानृतम् ब्रूयात्, एष धर्मः सनातनः।।

लेकिन सामान्य लोक व्यवहार में प्रत्येक सत्य सभी के लिए प्रियकर हो, ऐसा सम्भव नहीं है फिर भी हमारा प्रयास यही होना चाहिए कि यदि किसी की आलोचना एंव निन्दा भी की जाए अथवा किसी के लिए कही गई कोई बात सत्य के साथ अप्रियकर हो तो भी उसके लिए अनिष्टकारी नहीं होनी चाहिए। इसी तरह यदि साहित्य–सृजन में सत्य के साथ कल्पना आदि का समावेश किया जाता है तो वह भी सत्य से बहुत दूर भ्रामक और विध्वंसक नहीं होना चाहिए।

आज कल साहित्यकारों के मूल्यांकन की नई प्रथा बन गई है, जो सत्य के प्रति उनकी निष्ठा एवं साहित्य सर्जना के विपरीत उनके वय, उनकी रचनाओं की संख्या आदि पर आधारित है, किन्तु यह मानदण्ड उचित नहीं है। साहित्यकारों का मूल्यांकन उनके द्वारा सृजित ग्रन्थों की संख्या के बजाए उन ग्रन्थों में वर्णित सामाजिक यथार्थ, इनसे समाज पर होने वाले प्रभाव की व्यापकता तथा उनकी विषय–वस्तु से उत्पन्न होने वाले सामाजिक सौहार्द, सद्भाव, सौमनस्य एवं समन्वय आदि के फलित की दृष्टि से किया जाना चाहिए। पुनः किसी साहित्यकार अथवा किसी विभूति के व्यक्तित्व का आंकलन उसके द्वारा किये गये कार्यों से किया जाना ही श्रेयस्कर है और उसके सम्मान का आधार भी यही होना चाहिए।

ध्यातव्य है कि साहित्य की पारदर्शिता समाज के निर्माण में सहायक होती है। इसलिए सामाजिक यथार्थ को जीवन्त रूप में प्रदर्शित करना ही साहित्य का उद्देश्य होना चाहिये। समाज के व्यापक हित में साहित्यकार को न केवल अपनी अभिव्यक्ति में स्पष्टता रखनी चाहिए, अपितु समाज को दिशा देने की अग्रिम परिकल्पना भी प्रस्तुत करनी चाहिए। वास्तविक साहित्यकार वही है, जिसके रचना संसार के माध्यम से हम समाज के हृदय का स्पर्श कर पाते हैं। साहित्य–दर्पण धवल हो तो सत्य प्रकट होकर ही रहता है। जिस प्रकार धुँधले दर्पण में वास्तविक रूप भी अस्पष्ट होता है, उसी प्रकार साहित्य का दर्पण धूमिल हो तो समाज का वास्तविक चित्रण संभव नहीं। गोस्वामी जी ने लिखा है–"मुकुर मलिन औ नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किम् दीना।" समाज की मान मर्यादा साहित्य पर ही अवलंबित है, इसलिए साहित्यकार को विरूपित स्वरूप दिखाने वाले दर्पण से सदा सर्वदा दूर ही रहना चाहिए।

"किसी का सत्य था,
मैंने संदर्भ में जोड़ दिया।
कोई मधुकोश काट लाया था,
मैंने निचोड़ लिया।
यों मैं कवि हूँ, आधुनिक हूँ नया हूँ ;
काव्य–तत्व की खोज में कहाँ नहीं गया हूँ?
चाहता हूँ, आप मुझे
एक–एक शब्द पर सराहते हुए पढ़ें।
पर प्रतिमा–अरे, वह तो
जैसी आपको रुचे, आप स्वयं गढ़ें।"

रचना के सृजन–काल की मनःस्थिति को अभिव्यक्ति देतीं 'अज्ञेय' की उक्त पंक्तियों का प्रस्तुत संदर्भ में भाव सहज ही समझा जा सकता है। पवित्र साधन ही उद्देश्य को पवित्र रख सकता है। यदि साहित्यकार सामाजिक कल्याण को अपना लक्ष्य बनाएंगे, तो आवश्यकता के अनुरूप सहज भाव से सर्वथा धवल दर्पण का चयन भी होगा।

अत्यंत हर्ष और उल्लास का विषय है कि हिन्दी कविता की त्रैमासिक पत्रिका 'पारस परस' अपने प्रकाशन के चौदहवें वर्ष में प्रवेश कर चुकी है। शिक्षाविद् एवं कवि स्व0 पारस नाथ पाठक 'प्रसून' की स्मृति में स्थापित 'पारस–बेला न्यास' द्वारा नियमित प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है– काव्य–सृजन को बढ़ावा देने के साथ ही उन महनीय कवियों की कविताओं, रचनाओं से साहित्य प्रेमियों को अवगत कराना, जिन्होंने अतीत में अपनी काव्य साधना द्वारा हिन्दी साहित्य को सवंर्द्धित किया है।

छायावाद के प्रमुख स्तम्भ जयशंकर प्रसाद के शब्दों में, 'काव्य आत्मा की रचनात्मक भाव धारा है जिसका सम्बंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेय रचना है।' कविवर पंत जी लिखते हैं, 'कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।' वस्तुतः काव्य, अन्तस्तल से उपजे उद्‌गारों की भावात्मक तथा रागात्मक परिणति है, जिसे अभिव्यक्ति देने के लिए यह पत्रिका निरन्तर प्रयत्नशील है।

इस पत्रिका के प्रकाशन के साथ हिन्दी साहित्य के उन्नयन के दृष्टिकोण से पारस–बेला न्यास प्रतिवर्ष काव्य की एक विभूति को 'पारस शिखर सम्मान' से सम्मानित भी करता है। गत वर्षों में वैश्विक कोविड महामारी के प्रभाव के कारण यह समारोह आयोजित नहीं किया जा सका। किंतु अब सभी पाठकों को अवगत कराते हुए प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है कि दिनाँक 13 एवं 14 अप्रैल, 2024 को 'प्रसून साहित्य उत्सव' का आयोजन उ0प्र0 संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ में किया जा रहा है, जिसमें 13 अप्रैल, 2024 को हिन्दी साहित्य की विभिन्न विभूतियों को 'पारस शिखर सम्मान' से विभूषित किया जाएगा।

अन्त में, 'पारस परस' के प्रस्तुत अंक के रचनाकारों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी उत्कृष्ट रचनाओं से अलंकृत यह पत्रिका पठनीय विषयवस्तु के साथ अपने वर्तमान स्वरूप में आकार ले सकी।

शुभकामनाओं सहित

डॉ0 अनिल कुमार

रोम-रोम में कण-कण में

- डॉ. अनिल कुमार पाठक

रोम–रोम में कण–कण में,
बाबूजी सहज समाए हैं।
सबसे बड़ा धर्म है सेवा,
सीख यही ले आए हैं।

नश्वर काया, झूठी माया,
आखिर मन भरमाया क्यों।
मानुष तो पानी का बुल्ला,
फिर इतना बौराया क्यों।

क्षणभंगुर जीवन के मद में,
क्यों झूठे गदराए हैं,
सबसे बड़ा धर्म है सेवा,
सीख यही ले आए हैं।

लोभ–मोह की ओढ़ चुनरिया,
आत्मस्वरूप छिपाया क्यों।
रात–दिवस लिप्सा में डूबे,
जीवन व्यर्थ गँवाया क्यों।

पहले कुछ परवाह नहीं की
अब काहे घबराए हैं?
सबसे बड़ा धर्म है सेवा,
सीख यही ले आए हैं।

गागर जब टूटेगी मद की,
कुछ भी हाथ न आएगा।
डूबेगी कागद की नैया,
संग अहं बह जाएगा।

सच्चरित्र, सद्गामी हैं जो
वही अमर हो पाए हैं।
सबसे बड़ा धर्म है सेवा,
सीख यही ले आए हैं।

❖❖❖

पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

17 जुलाई 1932 से

23 जनवरी 2008 तक

तुम अनादि हो, तुम अनन्त हो, दिग्दर्शक, प्रेरक, अरिहन्त।
अजर, अमर, हे प्राणतत्व! तुम, कण-कण में परिव्याप्त बसन्त।।

शिक्षाविद् व हिन्दी कविता के सशक्त हस्ताक्षर स्व0 पारस नाथ पाठक 'प्रसून' का जन्म उत्तर प्रदेश के जनपद–जौनपुर के गोपालपुर ग्राम में गुरुपूर्णिमा को हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय विद्यालयों से प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, गोरखपुर विश्वविद्यालय तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से विभिन्न उपाधियाँ प्राप्त कीं। वे सर्वोदय विद्यापीठ इण्टर कालेज, मीरगंज, जौनपुर में हिन्दी विषय के प्रवक्ता पद पर कार्यरत रहे।

स्व. 'प्रसून' की पावन स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए 'पारस परस' नाम से कविता की त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित करने का संकल्प लिया गया जो निर्बाध गति से चल रहा है।

किसान

– पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

ये भूखे जर्जर किसान,
बर्बर मानवता के निशान।
खेतों पर मेहनत करते ,
कड़ी धूप में जलते,
अपनी बहती स्वेद बूँद से,
खेतों का मृदु सिंचन करते।
केवल दो दाने को –
या धनपतियों की भूख मिटाने को।
पर बदले में यही त्याग,
बर्बर मानव का यही राग।

खूनों से होने दो आज फाग,
इनके बच्चों का यहीं साज।
इनके जीवन का यही राज,
'मरने दो भूखा, उसे आज।
निर्धन को मिलता यही ब्याज,
कैसा होता जीवन का वैभव–विलास।
महलों में कैसा होता हुलास,
ये अब तक जान न पाये,
केवल गम ही पाये।।

❖❖❖

आर्य-भूमि

– महावीर प्रसाद द्विवेदी

जहाँ हुए व्यास मुनि–प्रधान,
रामादि राजा अति कीर्तिमान।
जो थी जगत्पूजित धन्य–भूमि ,
वही हमारी यह आर्य्य–भूमि ।।

जहाँ हुए साधु हा महान्
थे लोग सारे धन–धर्म्मवान्।
जो थी जगत्पूजित धर्म्म–भूमि,
वही हमारी यह आर्य्य–भूमि।।

जहाँ सभी थे निज धर्म्म धारी,
स्वदेश का भी अभिमान भारी ।
जो थी जगत्पूजित पूज्य–भूमि,
वही हमारी यह आर्य्य–भूमि।।

हुए प्रजापाल नरेश नाना,
प्रजा जिन्होंने सुत–तुल्य जाना ।
जो थी जगत्पूजित सौख्य– भूमि ,
वही हमारी यह आर्य्य–भूमि।।

वीरांगना भारत–भामिनी थीं,
वीरप्रसू भी कुल– कामिनी थीं ।
जो थी जगत्पूजित वीर– भूमि,
वही हमारी यह आर्य्य–भूमि।।

स्वदेश–सेवी जन लक्ष लक्ष,
हुए जहाँ हैं निज–कार्य्य दक्ष ।
जो थी जगत्पूजित कार्य्य–भूमि,
वही हमारी यह आर्य्य–भूमि।।

❖❖❖

एक तुम हो

– माखनलाल चतुर्वेदी

गगन पर दो सितारेः एक तुम हो,
धरा पर दो चरण हैंः एक तुम हो,
'त्रिवेणी' दो नदी हैं! एक तुम हो,
हिमालय दो शिखर हैः एक तुम हो,
रहे साक्षी लहरता सिंधु मेरा,
कि भारत हो धरा का बिंदु मेरा ।

कला के जोड़–सी जग–गुत्थियाँ ये,
हृदय के होड़–सी दृढ वृत्तियाँ ये,
तिरंगे की तरंगों पर चढ़ाते,
कि शत–शत ज्वार तेरे पास आते ।

तुझे सौगंध है घनश्याम की आ,
तुझे सौगंध भारत–धाम की आ,
तुझे सौगंध सेवा–ग्राम की आ,
कि आ, आकर उजड़तों को बचा, आ।

तुम्हारी यातनाएँ और अणिमा,
तुम्हारी कल्पनाएँ और लघिमा,
तुम्हारी गगन–भेदी गूँज, गरिमा,
तुम्हारे बोल ! भू की दिव्य महिमा
तुम्हारी जीभ के पैंरो महावर,
तुम्हारी अस्ति पर दो युग निछावर ।

रहे मन–भेद तेरा और मेरा, अमर हो देश का कल का सबेरा,
कि वह कश्मीर, वह नेपाल; गोवा; कि साक्षी वह जवाहर, यह विनोबा,
प्रलय की आह युग है, वाह तुम हो,
जरा–से किंतु लापरवाह तुम हो।

❖❖❖

पावन प्रान्त तुम्हारी जय हो

- खुशीराम द्विवेदी 'दिव्य'

मन मन धन सर्वस जनगण के,
भरत भुवन के जीवन धन से।
जीवनदाता भाग्य विधाता,
प्रतिपालक प्रिय परिजन त्राता।
नित–नित प्रतिपल मंगलमय हो।
उत्तर प्रान्त तुम्हारी जय हो।।

तुलसी सूर कबीरा का ध्वज,
विंध्य प्रणाम करे पद पंकज।
रामलला उर मध्य विराजे,
शंकर कृष्ण धाम शुचि साजे।
सब प्रकार सब हित सुखमय हो।
प्यारे प्रान्त तुम्हारी जय हो।।

कर्ण पुरी नगरी छतिधारी,
गोरखधाम कीर्ति जग न्यारी।
गंगा यमुना कलि मल हारी,
शुभद गोमती सरयू प्यारी।
जड़ चेतन कण–कण निर्भय हो।
सुन्दर शान्त तुम्हारी जय हो।।

लक्ष्मण धाम प्राण सम सुन्दर,
सारनाथ श्रावस्ती मगहर।
रोशन विस्मिल मन्मथ शेखर,
प्रिय अशफाक सुहेल वीरवर।
तेरी निशि दिन दिव्य विजय हो।
पावन प्रान्त तुम्हारी जय हो।।

❖❖❖

होली

– लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक'

होली बसंत मिले इस भाँति, रसालों पे कोकिल बावली हो गई।
गाने लगी मधुपावली तो, मधु से मदमाती कली–कली हो गई।
रंग में भीगने की ऋतु आ गई–गुजित आज गली–गली हो गई।
देवरों के हुए सीधे दिमाग तो प्यार मे भाभी उतावली हो गई।।

वायु बसन्ती चली जब से अरुणाभा कपोलों में आने लगी।
कान में कूक पड़ी तो अकेले में बैठे सितार बजाने लगी।
खोकर धैर्य धमार की मार से प्यार भरी इठलाने लगी।
दर्पण में अपने ही कपोलों पे लेके गुलाल लगाने लगी।

भौंह तनी ही रही, बिना बात के आँख से आँख मिला के चली गई।
रूप गुमान भी रोके रूका नहीं, लोचनों में मुसकाके चली गई।
लाज से होके छुई–मुई गोरी गुलाल की मूठ चलाके चली गई।
फाग के राग मे ऐसी रंगी, अनुराग की आग लगाके चली गई।

पास गई भगिनी पति के सहसा भरी माँग, बनी मुँह बोली।
वाणी से ढाल रही थी सुधा, पर अन्तर में थी बड़ी बिश घोली।
होंठो में काजल, सेण्ट कपोलो में, भाल मे रोली लगा गई रोली।
बोली–बुरा मत मानिये जीजाजी, होली की रीति भली विधि होली।

शस्य महोत्सव है धरा का प्रिये, तो मत कोई रहस्य छिपाओ।
राग का रंग–तरंग का पर्व है, अँग में चोखी उमंग जगाओ।
एक ही रंग में जाये सभी रंग, ऐसा दिलो पर रंग जगाओ
चोली से दामन का मन जोड़ दो, भेद भुलाके गले लग जाओ।

❖❖❖

हार न अपनी मानूँगा मैं !

– गोपालदास ''नीरज''

हार न अपनी मानूँगा मैं !

चाहे पथ में शूल बिछाओ
चाहे ज्वालामुखी बसाओ,
किन्तु मुझे जब जाना ही है
तलवारों की धारों पर भी, हँस कर पैर बढ़ा लूँगा मैं ।

मन में मरु–सी प्यास जगाओ,
रस की बूँद नहीं बरसाओ,
किन्तु मुझे जब जीना ही है
मसल–मसल कर उर के छाले, अपनी प्यास बुझा लूँगा मैं ।

चाहे चिर गायन सो जाए,
और ह्रदय मुरदा हो जाए,
किन्तु मुझे अब जीना ही है
बैठ चिता की छाती पर भी, मादक गीत सुना लूँगा मैं ।

हार न अपनी मानूंगा मैं !

❖❖❖

गजल

- डॉ. कुंवर बेचैन

दिल पे मुश्किल है बहुत दिल की कहानी लिखना
जैसे बहते हुए पानी पे हो पानी लिखना
कोई उलझन ही रही होगी जो वो भूल गया
मेरे हिस्से में कोई शाम सुहानी लिखना
आते जाते हुए मौसम से अलग रह के ज़रा
अब के ख़त में तो कोई बात पुरानी लिखना
कुछ भी लिखने का हुनर तुझ को अगर मिल जाए
इश्क़ को अश्कों के दरिया की रवानी लिखना।
इस इशारे को वो समझा तो मगर मुद्दत बाद
अपने हर ख़त में उसे रात–की–रानी लिखना।
नीड़ के तिनके
अगर चुभने लगें
पंछियों को फिर कहां पर ठौर है।
जो न होतीं पेट की मजबूरियां
कौन सहता सहजनों से दूरियां।
छोड़ते क्यों नैन के पागल हिरन
रेत पर जलती हुई कस्तूरियाँ
नैन में पलकें
अगर चुभने लगें
पुतलियों को फिर कहां पर ठौर है।
पंख घायल थे मगर उड़ना पड़ा
दूर के आकाश से जुड़ना पड़ा
एक मीठी बूंद पीने के लिए
जिस तरफ जाना न था मुड़ना पड़ा
फूल भी यदि
शूल–से चुभने लगें
तितलियों को फिर कहाँ पर ठौर है।

❖❖❖

नारद का पछतावा

- सुरेश सलिल

नारद के भ्रम ने आहत किया था लय और नाद को ।

क्षत–विक्षत हालत में
देखा था उन्हें पथ के दोनों ओर
खून और मांस के कीचड़ में छटपटाते
अन्तिम सांसें लेते।

और बहुत पछताए थे नारद
अपनी भूल–ग़लती पर
(पछतावा भूल–ग़लती के अहसास पर ही होता है)

नारद मात्र वादक थे, गायक थे,
शब्द सम्पदा उन्हें मिली थी श्रुति परम्परा से,
कवि यदि होते, तो
भ्रम के शिकार नहीं
घमण्ड से भरे होते।

कोई परवाह नहीं होती उन्हें
लय और नाद की जघन्य हत्या की ।...

❖❖❖

कवि का घर

- रामदरश मिश्र

गेंदे के बड़े–बड़े जीवन्त फूल
बेरहमी से तोड़ लिए गए
और बाज़ार में आकर बिकने लगे।

बाज़ार से ख़रीदे जाकर वे
पत्थर के चरणों पर चढ़ा दिए गए
फिर फेंक दिए गए कूड़े की तरह।

मैं दर्द से भर आया
और उनकी पंखुड़ियाँ रोप दीं
अपनी आँगन–वाटिका की मिट्टी में
अब वे लाल–लाल, पीले–पीले, बड़े–बड़े फूल बनकर
दहक रहे हैं।

मैं उनके बीच बैठकर उनसे संवाद करता हूँ
वे अपनी सुगन्ध और रंगों की भाषा में
मुझे वसन्त का गीत सुनाते हैं
और मैं उनसे कहता हूँ
जीओ मित्रो !
पूरा जीवन जीओ उल्लास के साथ
अब न यहाँ बाज़ार आएगा
और न पत्थर के देवता पर तुम्हें चढ़ाने के लिए धर्म
यह कवि का घर है !

❖❖❖

जवान होते बेटो!

– अष्टभुजा शुक्ल

जवान होते बेटो !
इतना झुकना
इतना
कि समतल भी खुद को तुमसे ऊँचा समझे
कि चींटी भी तुम्हारे पेट के नीचे से निकल जाए
लेकिन झुकने का कटोरा लेकर मत खड़े होना घाटी में
कि ऊपर से बरसने के लिए कृपा हँसती रहे

इस उमर में
इच्छाएँ कंचे की गोलियाँ होती हैं
कोई कंचा फूट जाए तो विलाप मत करना
और कोई आगे निकल जाए तो
तालियाँ बजाते हुए चहकना कि फूल झरने लगें।

किसी को भीख न दे ना पाना तो कोई बात नहीं
लेकिन किसी की तुमड़ी मत फोडना़
किसी परेशानी में पड़े हुए की तरह मत दिखाई देना
किसी परेशानी से निकल कर आते हुए की तरह दिखना
कोई लड़की तुमसे प्रेम करने को तैयार न हो
तो कोई लड़की तुमसे प्रेम कर सके
इसके लायक खुद को तैयार करना।
जवान होते बेटो !

इस उमर में संभव हो तो
घंटे दो घंटे मोबाइल का स्विच ऑफ रखने का संयम बरतना
और इतनी चिकनी होती जा रही दुनिया में
कुछ खुरदुरे बने रहने की कोशिश करना।

जवान होते बेटो !
जवानी में न बूढ़ा बन जाना शोभा देता है
न शिशु बन जाना
यद्यपि बेटो
यह उपदेश देने का ही मौसम है
और तुम्हारा फर्ज है कोई भी उपदेश न मानना...

❖❖❖

सपना है धरती का

– नंदकिशोर आचार्य

फूल सपना है धरती का
आकाश की ख़ातिर

निस्संग है आकाश पर
खिल आने से उसके
जो एक दिन झर जाएगा चुपचाप।

धरती सँजोएगी उसे
मुर्झाए सपनों से ही अपने
खुद को सजाती है वह
जिन में बसा रहता है
उस का खिलना।

सपनों के खिलने–मुर्झाने की
गाथा है धरती
अपने आकाश की ख़ातिर ।

❖❖❖

मेरे भारत की माटी है चन्दन और अबीर

- सोम ठाकुर

सागर चरण पखारे, गंगा शीश चढ़ावे नीर
मेरे भारत की माटी है चन्दन और अबीर
सौ–सौ नमन करूँ मैं भैया, सौ–सौ नमन करूँ।

मंगल भवन अमंगलहारी के गुण तुलसी गावे
सूरदास का श्याम रंगा मन अनत कहाँ सुख पावे
जहर का प्याला हँस कर पी गई प्रेम दीवानी मीरा
ज्यों की त्यों रख दीनी चुनरिया, कह गए दास कबीर
सौ–सौ नमन करूँ मैं भैया, सौ– सौ नमन करूँ।

फूटे फरे मटर की भुटिया, भुने झरे झर बेरी
मिले कलेऊ में बजरा की रोटी मठा मठेरी
बेटा माँगे गुड की डलिया, बिटिया चना चबेना
भाभी माँगे खट्टी अमिया, भैया रस की खीर
सौ–सौ नमन करूँ मैं भैया, सौ–सौ नमन करूँ।

फूटे रंग मौर के बन में, खोले बंद किवड़िया
हरी झील में छप छप तैरें मछरी सी किन्नरिया
लहर लहर में झेलम झूमे, गावे मीठी लोरी
पर्वत के पीछे नित सोहे, चंदा सा कश्मीर
सौ–सौ नमन करूँ मैं भैया, सौ– सौ नमन करूँ।

चैत चाँदनी हँसे , पूस में पछुवा तन मन परसे
जेठ तपे धरती गिरजा सी, सावन अमृत बरसे
फागुन मारे रस की भर भर केसरिया पिचकारी
भीजे आंचल , तन मन भीजे, भीजे पचरंग चीर
सौ–सौ नमन करूँ मैं भैया, सौ–सौ नमन करूँ।

❖❖❖

उसे ले गए

- नरेश सक्सेना

अरे कोई देखो
मेरे आंगन में कट कर
गिरा मेरा नीम
गिरा मेरी सखियों का झूलना
बेटे का पलना गिरा
गिरी उसकी चिड़ियां
देखो उड़ा उनका शोर
देखो एक घोंसला गिरा–
देखो वे आरा ले आए, ले आए कुल्हाड़ी
और रस्सा ले आए
उसे बांधने
देखो, कैसे काँपी उसकी छाया
उसकी पत्तियों की छाया
जिनसे घाव मैने पूरे
देखो कैसे कटी उसकी छाल
उसकी छाल में धंसी कुल्हाड़ी की धार
मेरे गीतों में धंसी मनौती में धँसी
मेरे घावों में धंसी
कुल्हाड़ी की धार
बेटे ने गिन लिये रूपये
मेरे बेटे ने
देखो उसके बाबा ने कर लिया हिसाब
उसे ले गए
जैसे कोई ले जाए लावारिस लाश
घसीट कर
ऐसे उसे ले गए
ले गए आंगन की धूप छांह
सुबह शाम
चिड़ियों का शोर
ले गए ऋतुएं
अबतक का संग साथ
सुख दुख सब जीवन–ले गये।

❖❖❖

दर्द पलता रहा

- विद्या विन्दु सिंह

दर्द पलता रहा चोट खाते रहे,
पर अधर ये मेरे मुस्कराते रहे।

मेरी कोशिश अंधेरों से लड़ने की थी,
स्नेह भरकर दिये में जलाते रहे।

पाँव घायल हमारे हुए भी तो क्या,
सारा जीवन उन्हें हम छिपाते रहे।

दर्द की हिमशिलाएँ पिघलती नहीं,
हम स्वयं को शिला सी बनाते रहे।

माँगते ही रहे खैर रिश्तों की हम,
सारे रिश्ते तो नजरें चुराते रहे।

अपने साये के पीछे नहीं हम चले,
धूप की ओर राहें बढ़ाते रहे।

वक्त हमको हमेशा ही छलता रहा,
पर उसे आइना हम दिखाते रहे।

वो जो पत्थर हमारे बदन पर लगे,
वार सहकर उन्हें हम हराते रहे।

❖❖❖

जो मेरे घर कभी नहीं आएँगे

- विनोद कुमार शुक्ल

जो मेरे घर कभी नहीं आएँगे
मैं उनसे मिलने
उनके पास चला जाऊँगा।
एक उफनती नदी कभी नहीं आएगी मेरे घर
नदी जैसे लोगों से मिलने
नदी किनारे जाऊँगा
कुछ तैरूँगा और डूब जाऊँगा।

पहाड़, टीले, चट्टानें, तालाब
असंख्य पेड़ खेत
कभी नहीं आयेंगे मेरे घर
खेत खलिहानों जैसे लोगों से मिलने
गाँव–गाँव, जंगल–गलियाँ जाऊँगा।
जो लगातार काम से लगे हैं
मैं फुरसत से नहीं
उनसे एक जरूरी काम की तरह
मिलता रहूँगा।––
इसे मैं अकेली आखिरी इच्छा की तरह
सबसे पहली इच्छा रखना चाहूँगा

❖❖❖

गीत

--डॉ.उमाशंकर शुक्ल' शितिकंठ'

जियो स्वदेश के लिए ,मरो स्वदेश के लिए;
असंख्य कंठ सूखते झरो स्वदेश के लिए।
प्रचंड मार्तण्ड तुल्य ताप झेलते हुए;
तमिस्र सिंधु में प्रभा–तरंग रेलते हुए;
विशाल शैल–शृङ्ग राह के ढकेलते हुए;
दुरंत काल दंष्ट्र से ,सहर्ष खेलते हुए;
बढ़ो स्वदेश के लिए,चढ़ो स्वदेश के लिए;
प्रकर्ष के शिखर नये,गढ़ो स्वदेश में लिए।।

कुदृष्टि मातृ–भूमि पर पड़े जो आँख फ़ोड़ दो;
बढे तिरंग ओर जो दरिन्द हाथ तोड़ दो;
उदग्र दस्युओं की दृप्त गर्दने मरोड़ दो;
समक्ष कलआ पड़े लड़ो अजेय होड़ दो;
लुटो स्वदेश के लिए,मिटो स्वदेश के लिए;
चुनौतियां पुकारतीं डटो स्वदेश के लिए।।

विलोक लो कि सिंहवाहिनी यहाँ मराल पर;
कराल कालकूट कंठ ,गंग चंद्रभाल पर;
सहर्ष पद्मिनी चढ़ी चिता की ज्वालमाल पर;
असंख्य शौर्य–लेख हैं लिखे कपाल– काल पर;
पलो स्वदेश के लिए,;फलो स्वदेश के लिए;
प्रभाकरो करो प्रभा,जलो स्वदेश के लिए।।

मनुष्य के मनुष्य से सम्बन्ध तोलते चलो;,
स्व देश की अखंडता के बोल बोलते चलो;
ज़मीं को जोड़ते चलो, ज़हर न घोलते चलो;
लुटा गये जो प्राण–पुष्प मोल मोलते चलो;
चलो स्वदेश के लिए,गलो स्वदेश के लिए;
सुकीर्तिमान बीज बो चलो स्वदेश के लिए।
जियो स्वदेश के लिए !

❖❖❖

मन का भी श्रृंगार जरूरी है

डॉ. शिवभजन 'कमलेश'

तन का तो श्रृंगार नित्य ही करते हम,
लेकिन मन का भी श्रृंगार जरूरी है।

लेकर झूठी शान दिखाते हैं शेखी,
मन पर चढ़ी मलिनता हमने कब देखी।
हम तो केवल वक्ष तान कर चलते हैं,
अस्थिर भौतिकता के लिए मचलते हैं।

वैभव होने का केवल दम भरते हम,
पर, विद्या–धन का भण्डार जरूरी है।

हमने सोचा नहीं,हमे कैसे जीना,
सत्य, शिवम के लिए पड़ेगा विष पीना।
हम केवल अपने मन पर इतराते हैं,
मन को वश में करने से कतराते हैं।

अपने हित के लिए सदा ही मरते हम,
पर औरों का भी उपहार जरूरी है।

तन तो जगमग करता उजियारे में,
मन बेचारा भटक रहा अँधियारे में।
इसके भीतर ज्ञान–दीप रखना होगा,
इसको भी महिमा–मण्डित करना होगा।

रूचि लेकर तन के विकार तो हरते हम,
लेकिन मन का भी उपचार जरूरी है।

❖❖❖

होली

- अशोक कुमार पाण्डेय "अशोक "

बावले से हो गए सभी हैं ग्राम गोकुल में,
इनपे अचूक मीनकेतन का टोना है।
रंग की फुहार से गुलाल मार से 'अशोक',
श्याम, राधिका का रूप अधिक सलोना है
इतना अबीर है उड़ाया ब्रज–नारियों ने,
डोल रहा भार से जलज पुष्प–दोना है।
ऐसी तुंग धार चली गोप पिचकारियों की,
भीगा उषा सुन्दरी की चूनर का कोना है।

"राधिका वदन पर उपमा सदन पर,
सुषमा रची है पिचकारियों की धार ने
लाल,नील कमल खिलें हैं रूप–मानस में,
वास किया याकि उषा,रजनी श्रृँगार ने
मिलन की वेदियों ने छाप छोड़ दी है याकि,
तन दुलराया गीले गजरों के हार ने
कल्पना विचार उर धार बार – बार याकि,
तूलिका चलाई है मनोज चित्रकार ने

❖❖❖

गीतों के गाँव

- ओम निश्चल

फूलों के गाँव
फसलों के गाँव
आओ चलें गीतों के गाँव।

महके कोई रह रह के फूल
रेशम हुई राहों की धूल
बहती हुई अल्हड़ नदी
ढहते हुए यादों के कूल
चंदा के गाँव
सूरज के गाँव
आओ चलें तारों के गाँव।

पीपल के पात महुए के पात
आँचल भरे हर पल सौगात
सावन झरे मोती के बूँद
फागुनी धूप सहलाए गात
पीपल की छाँव
निबिया की छाँव
आओ चलें सुख–दुख की छाँव।

नदिया का जल पोखर का जल
मीठी छुवन हर छिन हर पल
गुज़रे हुए बासंती दिन
अब भी नहीं होते ओझल
भटकें नहीं
लहरों के पाँव
आओ चलें रिश्तों की नाव।

❖❖❖

ज़िन्दगी की न टूटे लड़ी

- संतोष आनन्द

ज़िन्दगी की न टूटे लड़ी
प्यार कर ले घड़ी दो घड़ी
लम्बी लम्बी उमरिया को छोड़ो
प्यार की एक घड़ी है बड़ी

उन आँखों का हँसना भी क्या
जिन आँखों में पानी न हो
वो जवानी जवानी नहीं
जिसकी कोई कहानी न हो
आंसू है खुशी की लड़ी।

मितवा, तेरे बिना
लागे ना रे जियरा, लागे ना

आजसे अपना वादा रहा
हम मिलेंगे हर एक मोड़ पर
दिल की दुनिया बसाएंगे हम
ग़म की दुनिया का डर छोड़ कर
जीने मरने की किसको पड़ी।

लाख गहरा हो सागर तो क्या
प्यार से कुछ भी गहरा नहीं
दिल की दीवानी हर मौज पर
आसमानों का पहरा नहीं
टूट जाएगी हर हथकड़ी।

ओ मितवा, ओ मितवा
मितवा रे मितवा
लागे ना रे जियरा।।

❖❖❖

जिसे देश से प्यार नहीं हैं

- श्रीकृष्ण सरल

जिसे देश से प्यार नहीं हैं
जीने का अधिकार नहीं हैं।

जीने को तो पशु भी जीते
अपना पेट भरा करते हैं
कुछ दिन इस दुनिया में रह कर
वे अन्ततः मरा करते हैं।
ऐसे जीवन और मरण को,
होता यह संसार नहीं है
जीने का अधिकार नहीं हैं।

मानव वह है स्वयं जिए जो
और दूसरों को जीने दे,
जीवन–रस जो खुद पीता वह
उसे दूसरों को पीने दे।
साथ नहीं दे जो औरों का
क्या वह जीवन भार नहीं है?
जीने का अधिकार नहीं हैं।

साँसें गिनने को आगे भी
साँसों का उपयोग करो कुछ
काम आ सके जो समाज के
तुम ऐसा उद्योग करो कुछ।
क्या उसको सरिता कह सकते
जिसमें बहती धार नहीं है?
जीने का अधिकार नहीं हैं।

❖❖❖

वीर

- रामधारी सिंह ''दिनकर''

सच है, विपत्ति जब आती है,
कायर को ही दहलाती है,
सूरमा नहीं विचलित होते,
क्षण एक नहीं धीरज खोते,
विघ्नों को गले लगाते हैं,
काँटों में राह बनाते हैं।

मुहँ से न कभी उफ़ कहते हैं,
संकट का चरण न गहते हैं,
जो आ पड़ता सब सहते हैं,
उद्योग–निरत नित रहते हैं,
शूलों का मूल नसाते हैं,
बढ़ खुद विपत्ति पर छाते हैं।

है कौन विघ्न ऐसा जग में,
टिक सके आदमी के मग में?
ख़म ठोंक ठेलता है जब नर
पर्वत के जाते पांव उखड़,
मानव जब जोर लगाता है,
पत्थर पानी बन जाता है।

गुन बड़े एक से एक प्रखर,
हैं छिपे मानवों के भीतर,
मेंहदी में जैसी लाली हो,
वर्तिका–बीच उजियाली हो,
बत्ती जो नहीं जलाता है,
रोशनी नहीं वह पाता है।

❖❖❖

स्वदेश

– रामनरेश त्रिपाठी

सबको स्वतंत्र कर दे यह संगठन हमारा।
छूटे स्वदेश ही की सेवा में तन हमारा।।

जब तक रहे फड़कती नस एक भी बदन में।
हो रक्त बूँद भर भी जब तक हमारे तन में
छीने न कोई हमसे प्यारा वतन हमारा।
छूटे स्वदेश ही की सेवा में तन हमारा।

कोई दलित न जग में हमको पड़े दिखाई।
स्वाधीन हों सुखी हों सारे अछूत भाई
सबको गले लगा ले यह शुद्ध मन हमारा।
छूटे स्वदेश ही की सेवा में तन हमारा

अचरज नहीं की साथी भग जायँ छोड़ भय में।
घबरायँ क्यों? खड़े हैं भगवान जो हृदय में
धुन एक ध्यान में है, विश्वास है विजय में।
हम तो अचल रहेंगे तूफ़ान में प्रलय में
कैसे उजाड़ देगा कोई चमन हमारा?
छूटे स्वदेश ही की सेवा में तन हमारा

हम प्राण होम देंगे, हँसते हुए जलेंगे।
हरएक साँस पर हम आगे बढ़े चलेंगे।
जब तक पहुँच न लेंगे तब तक न साँस लेंगे
वह लक्ष्य सामने है पीछे नहीं टलेंगे।
गाएँ सुयश खुशी से जग में सुजन हमारा।
छूटे स्वदेश ही की सेवा में तन हमारा

❖❖❖

हम हैं किशोर

- राम स्वरूप दूबे

भावी भारत की लिये डोर,
हम हैं किशोर, हम हैं किशोर ।
बीते दिन हाथ पकड़ने के,
अब नहीं सहारा तकते हैं।
बीते दिन गिर–गिर उठने के,
अब उछल–कूद कर सकते हैं।
अब लम्बी दौड़ लगाते हम,
बहुतों को खूब छकाते हम,
दर्शक कर उठते तभी शोर,
हम हैं किशोर, हम हैं किशोर !
नव ज्ञान बढ़ाया है हमने,
चन्दा मामा को जान गये।
उसके फोटो हैं देख लिये,
नभ के ग्रह को पहचान गये।
हर ग्रह के खोजी बने हुए,
उड़ते हैं, सीने तने हुए,
हम नापेंगे सब ओर–छोर,
हम हैं किशोर, हम हैं किशोर !
भावी भारत के नेता हैं,
हम देश–प्रेम में पगे हुए।
प्रहरी हम जन्म–भूमि के हैं,
हम सावधान, हम जगे हुए।
मजहब की राहें हैं अनेक,
फिर भी हम रहते सदा एक,
हम ही लायेंगे नयी भोर ।
हम हैं किशोर, हम हैं किशोर ।

❖❖❖

मैना की शादी

– शंभूलाल शर्मा 'बसंत'

अमराई तो खूब सजी है
मैना की है शादी,
इसीलिए तो बगिया–बगिया
कोयल करे मुनादी।

पड़की, सुग्गा, श्यामा, बुलबुल
एक से एक चिरैया,
हँस–हँस मैना से बतियाएँ
संग में है गौरैया।

चूँ–चूँ, चीं–चीं, कूँ–कूँ कितने
स्वर में गाएँ बढ़िया,
ताक–धिना–धिन, फुदक–फुदक कर
नाच रहीं हैं चिड़ियाँ।

डाल–डाल हर पात सजा है
मौसम है सुखदाई,
शादी के दिन मैना रानी
मन ही मन सकुचाई।

सोच रही है मैना क्या–क्या
हुई शर्म से लाल,
मुझे बता दे, कोई–
कैसी होती है ससुराल?

❖❖❖

खेल कबड्डी

- रामसेवक शर्मा

देशी खेल हमारा–
खेल कबड्डी का
सबसे सस्ता प्यारा
खेल कबड्डी का।
महँगा क्रिकेट–साथी
टेनिस बल्ला है,
समझ नहीं आता क्यों
इतना हल्ला है।
बोल कबड्डी, बोल कबड्डी
बोलो भी
कितना दम खम है,
आपस में तोलो भी।
करें प्रदर्शन घेर
खिलाड़ी आते हैं,
दिल्ली की संसद में
माँग उठाते हैं।
सबको हो अनिवार्य
कबड्डी, क्या कहना,
मैच कबड्डी वाले
होते ही रहना।

❖❖❖

आखिरी मुलाकात

– कल्पना पंत

उस आखिरी मुलाक़ात
के बीतने के बाद
अब तुमसे हुई जो बात
चांद फिर आया मेरे हाथ

तुम्हारी आवाज में वही तुम
कुछ शामें जी जिसके साथ
तुम्हारी तस्वीर से मिल आनलाइन
मैं आंखें बंद करती हूँ
अंतस में वही छवि उभरती है।

वाट्सऐप पर कभी–कभी
बात नहीं होती पर मुलाकात होती है।
बांचने के बहाने तुम
हाथों में थाम मेरा हाथ
फिर बैठते हो साथ
पार्क की वे शामें
वे सुनहरे दिन
क्या करुं तुम बिन?

❖❖❖

याचना

- तारादेवी पांडेय

खड़ी भिखारिन कबसे द्वार!
माँग रही है सुखमय प्यार;
टूटा–फूटा मन का खप्पर,
हाथों में लेकर आयी।

दे दो मुझको वह अमूल्य–धन
बड़ी आस लेकर आयी,
आज बहा दो मधुमय धार;
लेने आयी केवल प्यार।

जिसे देखकर हँसे चन्द्रमा–
ऐसा प्यार न मैं लूँगी,
घटता–बढ़ता देख उसे प्रभु,
कैसे जीवन रख लूँगी।

तारों–सा झिलमिल संसार;
मुझे चाहिए ऐसा प्यार।
कहीं पहेली–सा रहस्यमय–
बना न देना जीवन–सार;

पूर्ण स्वच्छ हो और निष्कपट,
देव! हमारा भोला प्यार;
बिना प्रेम के जीवन भार,
दे दो, दे दो अपना प्यार।

❖❖❖

धुआँ नहीं मँडराया

– पुष्पा राही

पूजा के फलों को
वापस ले आयी हूँ,
मन्दिर का द्वार आज बन्द था।
धुआँ नहीं मडँराया
चिमनी के घेरे पर,
गगन नही धुँधलाया
शहर के सवेरे पर,
अनसोए द्वन्द्वों को
आज सुला आयी हूँ
बाहर कोलाहल भी मंद था।
तितली के पंखों के
गिनती हूँ रंग आज,
झरनों की कलकल के
बहती हूँ संग आज,
कोहरे की कारा से
किरण चुरा लायी हूँ
फूलों में भरना मकरंद था
खुशियों के दर्पण को
हाथों में ले लूँगी,
दूर कहीं निर्जन की
गोदी में खेलूँगी,
भीड़ भरे मेले से
ढूँढ़–ढूँढ़ लायी हूँ,
बच्चे–सा भटका आनन्द था।

❖❖❖

बसन्त

- त्रिवेणीप्रसाद दुबे 'मनीष'

अमराई में, महके बौर,
उल्लास बसा, सब दिशा ओर।
कूके कोयल, मचलें मीन,
जामुन पर भी, फल नवीन।।

गेहूँ, सरसों से लहके खेत,
गीली माटी व भीगी रेत।
विदा ले रही, तीव्र शीत,
वायु प्रसारित, प्रणय गीत।।

सृजन, साहित्य का उचित काल,
मन मुदित सभी हैं झील ताल।
वसुधा पर, मोहक अरुणाई,
जीवों में, अद्‌भुत तरुणाई।।

उर जनित उमंग, मन अधीर,
नूतन सुगन्ध, धारित समीर।
द्रुमों पर पल्लव परिवर्तन,
भावोदय, विचार व चिन्तन।।

मदन समाहित, सब जल–थल,
कोण–कोण, अनुपम हलचल।
अर्पित और समर्पित मन,
सरस बने, नीरस जीवन।।

❖❖❖

हे भारत माँ

– वीरपाल सिंह 'निश्चल'

हे भारत माँ, तुझे प्रणाम्,
भारत माता तुझे सलाम।

तुम भी आओ हम भी आयें,
गीत प्यार के मिल जुल गायें,
इक दूजे को दोनों देंगे
आज मुहब्बत का पैगाम।
हे भारत माँ तुझे प्रणाम।

मिल गये दोनों नील गगन में,
फूल खिल गये मस्त चमन में,
बगिया और बागवाँ खुश हैं,
उधर मुशर्रफ इधर कलाम।
हे भारत माँ तुझे प्रणाम।

दहशत उनकी हमको रहती,
हवा एक जैसी नहीं बहती,
अब तक हम पर कसी रही क्यों?
वो नफरत की लाल लगाम।
हे भारत माँ तुझे प्रणाम।

प्यार किया है प्यार करेंगे,
घाव चोट के हमीं भरेंगे,
वायदा करो मिलोगे अब कब?
भूल न जाना मेरा नाम।
हे भारत माँ तुझे प्रणाम।

❖❖❖

जंगल

– कीर्त्तिनारायण मिश्र

किसी अनजानी जगह में
कोई अनजाना
किससे राह पूछे
जहाँ सबको अपनी–अपनी पड़ी हो
वहाँ कौन किसकी बात सुने?

यहाँ सबने सीखी है बन्द रहने की कला
'हाय–हलो' वाले कैसे पूरा खुलें भला
नपी–तुली–सधी मुस्कुराहटें
और हिलते हाथ
कब तक दें साथ?

जहाँ हर कोई अकेला हो
किसी को किसी की न हो ख़बर
जहाँ अन्तर के तारों पर बजते हों
अलग–अलग स्वर
वहाँ भी
पौधे, बौर, वृक्ष, फूल और कलियाँ
जंगल और झरने, जलचर और नदियाँ
सुनाते रहते हैं अविराम
पर्वत को 'साम'
खुलता रहता है अनायास सबका ताना–बाना
राह पा लेता है हर भूला–भटका अनजाना ।

❖❖❖

पहाड़ी के पत्थर

– अनिल मिश्र

हवा दिशा बदलती है और पानी अपने रास्ते
इन पत्थरों पर बैठकर
आसमान अपने कपड़े बदलता है।

लाखों वर्षों से निश्चल निर्विकार पड़े
एक विशाल शिलाखंड पर
कभी–कभी आती है एक थकी उड़ान
और छोड़ जाती है कोई टूटा हुआ पंख
अपनी कमर में डलिया बांधे स्त्रियां आती हैं
और आंसुओं से तर कर जाती हैं।
पहाड़ी की छाती
उनके साथ आते हैं बच्चे
और लगातार कुछ समझाते रहते हैं पत्थरों को
कभी–कभी आता है हारा हुआ प्रेम
और किसी शिला के सीने से लिपट कर
बहुत रोता है।

जिस में घुस नहीं पाती
लोहे की नुकीली छेनी
उन्हीं प्रस्तरों को चीरती
घुसती जाती है
कोमल पौधे की मुलायम जड़।

❖❖❖

कागज में कोहनूर

- श्याम नारायण

घर में हो या विदेश में, दिन हो या रात हो।
खुशियालियाँ हो या कि, दुखों की बारात हो।
मिलती रहेगी रोशनी हरवक्त ज्ञान की,
पुस्तक हो एक हाथ में, कोई न साथ हो।

द्वेषों का दाँव–पेंच हो, विश्वासघात हो।
दुर्दिन हो या मुसीबतों का, वज्रपात हो।
इन सबकों झेलने की शक्ति देंगी पुस्तकें,
सद्ग्रंथ एक पास हो कोई न साथ हो।

बीते हुए अतीत को अमरत्व दिलातीं।
जो मर गये हैं उनको, पाठकों से मिलातीं।
चिंतन की निराकार, चेतना तरंग को,
साकार करती पुस्तकें, प्रत्यक्ष दिखातीं।

हर पृष्ठ में चिन्तन–मनन का सूर छिपा है।
कागज़ में जैसे कोई कोहनूर छिपा है।
अक्षर को सगुण ब्रह्म का अवतार समझिए,
ईश्वर ने स्वयं यत्न से वेदों को लिखा है।

देशों को भ्रातृ–भाव से जोड़ा है ग्रंथ ने।
अलगाव की दीवालों को तोड़ा है ग्रंथ ने।
सुकरात, वाल्मीकि, शेक्सपियर, टाल्सटाय,
सबको हमारी झोली में छोड़ा है ग्रंथ ने,

विज्ञान ज्ञान की अटूट ज्योति न जलती।
चलता मनुष्य किंन्तु उसकी एक न चलती।
पुस्तक कहें या इनको कहें सीढ़ी प्रगति की,
होतीं न पुस्तकें तो सृष्टि गिरती फिसलती।

❖❖❖

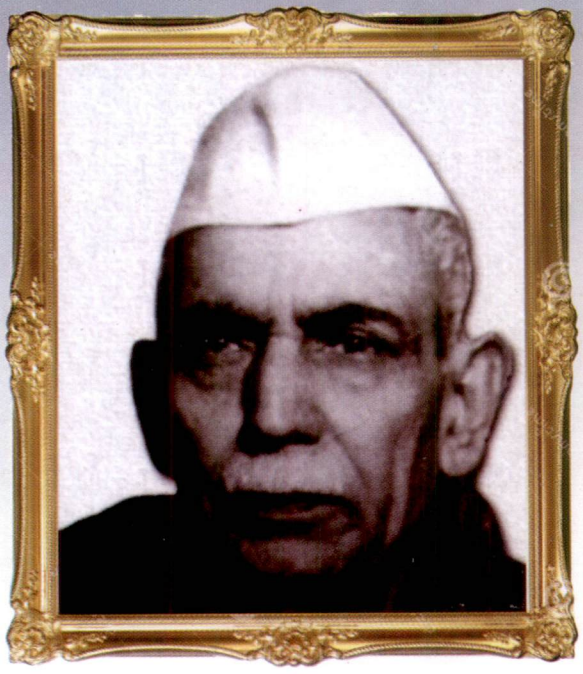

माखनलाल चतुर्वेदी

जन्म 04 अप्रैल 1889, निधन 30 जनवरी 1968

उनके सपने हरियाता मेरी सूझों का पानी
मुझसे बलि–पन्थ हरा है, मुझ पर दुनियाँ दीवानी!

एकान्त हमारा, विधि से विद्रोहों की मस्ती है,
उन्माद हमारा, शत–शत अरमानों की बस्ती है।

हमने दुनियाँ खो डाली, तब जग ने हमको पाया!
हम अपने पर हँस उट्ठे, तब कहीं जगत रो पाया!

ईंटों, पाषाणों का नर, ईमान न जीने देगा,
यह लाशों का रखवाला, नव–प्राण न जीने देगा!

सृजन स्मरण

खुशीराम द्विवेदी 'दिव्य'

जन्म- 8 जून 1948, निधन- 07 फरवरी 2024

जिसको गुरु के पद की रज वर देती है।
उसके उर पुर में सुभाव भर देती है।
श्री सुपूज्य गुरु देव मुझे भी दे दो जो
पदरज पावनि दिव्य दृष्टि कर देती है।।